International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 23-06-2022, Accepted: 12-07-2022, Published: 25-07-2022
Volume 8, Issue 4, 2022, Page No. 41-43

'हयवदन' और 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' नाटक में स्त्री–पुरुष संबंधः एक तुलना

नवीन सिंह
शोधार्थी, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश
स्त्री और पुरुष समाज रूपी रथ के दो पहिये के रूप में माने जाते हैं। इनमें से किसी एक के क्षतिग्रस्त होने पर समाजरूपी रथ का संतुलन भी स्थिर नहीं बना रह सकता। समाज के अभिन्न अंग होने के कारण साहित्य में स्त्री–पुरुष संबंधों को अनादि काल से चित्रित किया जाता रहा है। दृश्य काव्य अथवा नाटक अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम रहा है। अतः आधुनिक युग के नाटकों में स्त्री–पुरुष संबंधों को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखा–परखा गया है। हिंदी के नाटककारों में सुरेंद्र वर्मा व कन्नड़ नाटककार गिरीश कर्नाड के नाटकों में स्त्री–पुरुष संबंधों का एक विशिष्ट धरातल दिखाई देता है। प्रस्तुत आलेख में इन दोनों नाटककारों के चर्चित एवं बहुमंचित नाटक में स्त्री–पुरुष संबंधों के विभिन्न आयामों का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

मूल शब्दः पितृसत्ता, स्त्री–पुरुष संबंध, नैतिकता, आधुनिकता,मिथक, परंपरा आदि।

प्रस्तावना
मानव की कहानी हजारों वर्ष पुरानी है। मानव का इतिहास एक क्रमिक ऐतिहासिक घटना है। स्त्री और पुरुष सभ्यता की इस विकास–यात्रा के सहभागी रहे, उनकी यात्राएं साथ–साथ सम्पन्न हुई। फिर भी, सभ्यता की उन्नति व श्रम विभाजन के कारण स्त्री–पुरुष की जीवनशैली में भिन्नता उत्पन्न हुई। वर्तमान समय में स्त्री का जो परिवर्तित रूप दिखाई देता है उसकी पृष्ठभूमि को क्रमबद्ध रूप से समझने के लिए प्राचीन भारतीय ग्रंथ भी सहायक सिद्ध हुए हैं। प्राचीन भारतीय समाज में स्त्री की भूमिका तथा स्थिति को लेकर दो पक्ष सामने आते हैं – एक पक्ष स्त्री को देवी स्वरूपा मानकर उसका गुणगान करता है, जबकि दूसरा पक्ष उसे सारे अवगुणों और दुखों का मूल मानकर उसकी स्वतंत्रता पर अंकुश लगाने का पक्षधर है।
मनुष्य की कहानी ऊपरी तौर पर एक ही है परंतु भीतर यह दो पक्षों में विभक्त है– स्त्री और पुरुष। स्त्री तथा पुरुष की जैविक संरचना में प्रकृति प्रदत्त भेद है। इसीलिए इनकी शारीरिक तथा मानसिक क्षमताओं में भी स्वाभाविक अंतर है। समय के साथ–साथ मनुष्य ने सांस्कृतिक प्रगति की और स्त्री–पुरुष की स्वाभाविक भिन्नता ने सर्वपक्षीय भिन्नता का रूप ले लिया। इस भिन्नता का प्रभाव स्त्री–पुरुष के संबंधों पर पड़ना स्वाभाविक है। यूं तो स्त्री–पुरुष के अधूरेपन की त्रासदी और उनके उलझावपूर्ण संबंधों को कई समकालीन नाटककारों ने अपने नाटकों में दिखाने का प्रयास किया है किंतु गिरीश कर्नाड का 'हयवदन' और सुरेंद्र वर्मा कृत 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' नाटक कई दृष्टियों से अनूठा प्रयोग हैं। दोनों ही नाटक मानव जीवन के बुनियादी अंतर्विरोधों, संकटों और दबावों–तनावों को अत्यंत नाटकीय व कल्पनाशील रूप में अभिव्यक्त करता है। पुरुष की अपूर्णता और स्त्री की संपूर्णता की तलाश के मध्य संबंधों में त्रिकोण की स्थिति बन जाती है, जिसे दोनों ही नाटककारों ने अपने–अपने रचनात्मक कथानकों के सहारे अभिव्यक्त किया है।
सुरेंद्र वर्मा कृत 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' और गिरीश कर्नाड कृत 'हयवदन' नाटक में स्त्री द्वारा पूर्णता की तलाश और पुरुष के अधूरेपन के द्वंद्व को बहुत ही सूक्ष्म स्तर पर अभिव्यक्त किया गया है। 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' नाटक में ओक्काक अपनी नपुंसकता के दंश को झेलने को विवश है। उसकी यह पीड़ा और उससे उपजा आक्रोश प्रस्तुत कथन में स्पष्ट हो जाता है –
"ओक्काकः (किंचित् रोष से) तुम्हें मालूम है , यह आलेख किसने तैयार किया है ? ... मैं कल ही अमात्य – परिषद् में प्रस्ताव रखूँगा कि उस व्यक्ति को तुरन्त निकाल बाहर किया जाए । ... (बलपूर्वक) उसने एक भयंकर भूल की है ... अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी नागरिक को ... हँ , नागरिक ! ... नागरिक तो शिखंडी भी था ।...यहां होना चाहिए था, किसी भी पुरुष को चुनेंगी.."[1] यही पीड़ा 'हयवदन' नाटक में हयवदन की भी है, जहां शरीर घोड़े का है पर आवाज इंसान की। हयवदन न पूरी तरह घोड़ा ही हो पा रहा है और न पूरा इंसान –
": क्या बताऊँ , भागवतजी ! पूरा घोड़ा तो हूँ , पर अभी पूर्णांग नहीं हूँ । कमबख्त यह इन्सान की आवाज अभी मेरा पीछा नहीं छोड़ती । जैसे मेरे गले में चिपक ही गई हो ! जब तक इस इनसानी बोली से छुटकारा नहीं मिलता तब तक मैं पूर्णांग कैसे कहलाऊँगा?[2]" स्त्री और पुरुष संबंधों का प्रश्न सनातन काल से चला आ रहा है। पुरुष को बुद्धि और स्त्री को हृदय पक्ष से जोड़कर देखा जाता रहा है। पुरुष को वृक्ष तो स्त्री को लता के समान माना गया है। पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री को मात्र पुरुष की ही आवश्यकताओं के हिसाब से उपयोग में लाया जाता रहा है। राज्य के उत्तराधिकारी के लिए शीलवती को एक रात्रि के लिए उपपति चुनने के लिए विवश किया जाना, पुरुषवादी हितों के संरक्षण के लिए स्त्री की भावनाओं की बलि देने के समान है –

" में नगाड़े की ध्वनि । फिर उद्घोषक का स्वर ... " मल्लराज्य के हर नागरिक को ... सूचना दी जाती है ... कि आज से ठीक एक सप्ताह बाद ... पूर्णमासी की सन्ध्या को ... राजमहिषी शीलवती ... धर्मनटी बनकर ... राजप्रांगण में उतरेंगी । मल्लराज्य के हर नागरिक को ... प्रत्याशी बनकर ... पधारने का आमन्त्रण है । राजमहिषी शीलवती ... अपनी इच्छा के अनुसार ... किसी भी नागरिक को ... एक रात के लिए ... सूर्य की अन्तिम किरण से ... सूर्य की पहली किरण तक ... उपपति के रूप में चुनेंगी । (नगाड़े की ध्वनि । विराम)[3]" कहने के लिए तो उद्घोष में 'अपनी इच्छा के अनुसार..' का प्रयोग किया जा रहा है किंतु वास्तव में क्या शीलवती की इच्छा शामिल है ? यह प्रश्न पितृसत्तात्मक समाज में एक स्त्री की विडंबनात्मक स्थिति को दर्शाता है।

भारतीय समाज और संस्कृति में मातृत्व को बहुत ही सम्मानजनक दृष्टि से देखा जाता रहा है। माता बनकर स्त्री को जीने का सहारा मिलता है फिर चाहे उसके जीवन में पुरुष के प्रेम का अभाव हो जाये वह उसकी पूर्णता को अपने शिशु में महसूस कर लेती है। पहले के साहित्यकार भी स्त्री की सार्थकता भी मातृत्व में देखते रहे हैं। इस संबंध में सुरेंद्र वर्मा शीलवती के माध्यम से आज की स्वतंत्र स्त्री का स्वर बुलन्द करते हैं । महामात्य शीलवती को 'नियोग' के लिए आकर्षक और सुखद परिणाम का प्रलोभन देते हैं, जहां स्त्री को निर्जीव होकर राज्य के उत्तराधिकारी देने का एक साधन मात्र बन जाने के लिए विवश होना पड़ता है – " इस असंवेदनशील प्रलाप के लिए अपने – आपको बिल्कुल भूल जाएँ ... पलकें मूँद लें, कान बन्द कर लें ... बिल्कुल ढीला छोड़ दें शरीर को ... पाँचों इन्द्रियों को अचेतन करके भावतन्त्र को निर्जीव बना लें ... और मन की आँखों से लगातार केवल भावी परिणाम की ओर देखें ... अबोध मुद्रा , घुँघराली अलकें , दूधिया दाँत ... नारीत्व की सार्थकता ... मातृत्व की तृप्ति ... !"[4] महामात्य द्वारा शीलवती को नियोग हेतु ऐसे अस्वाभाविक व्यवहार की बातें कहने पर शीलवती का आक्रोश फुट पड़ता है। शीलवती कहती है कि नारीत्व की सार्थकता मातृत्व में नहीं बल्कि पुरुष के संयोग सुख में है। नाटककार ने शीलवती के माध्यम से आधुनिक स्त्री का चित्र प्रस्तुत किया है, जहाँ आज स्त्री केवल त्याग की मूर्ति, देवी और दासी बनकर नहीं रहना चाहती। वह भी अपनी मानवीय आवश्यकताओं को किसी मर्यादा के नाम पर तिलांजलि देने वाली नहीं।

'काम' मनुष्य की एक सार्वजनीन और सर्वकालिक नैसर्गिक प्रवृति है । इसलिए मनुष्य के स्वरूप के स्वस्थ जीवन विकास के लिए काम का स्थान महत्वपूर्ण है । काम प्रवृति को नकारा नहीं जा सकता है । मनुष्य की वैयक्तिक और सामाजिक जीवन की अखंडता उसकी वैध संतुष्टि पर आधारित है । काम मूलतः सामाजिक भाव है जिसकी परितुष्टि स्त्री–पुरुष के संयोग से होती है । भारतीय विचारधारा के अनुसार मनुष्य के ऐहिक और आध्यात्मिक उत्कर्ष के लिए धर्म, अर्थ काम और मोक्ष का संतुलन जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखता है । इसलिए मनुष्य के स्वस्थ जीवन के विकास में 'काम' को हेय और अश्लील घोषित करना उचित नहीं । मानव वंश का क्रम जारी रखने के लिए काम का स्थान महत्वपूर्ण है । 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' नाटक में शीलवती द्वारा पत्नी धर्म का निर्वाह करते हुए प्रेम के निर्वाह का प्रयास है। प्रेम और काम को ध्यान में रखते हुते सुरेंद्र वर्मा ने स्त्री–पुरुष संबंधों में काम के महत्त्व को भी रेखांकित किया है –

": शीलवती (अभिभूत – सी): कैसा अनोखा – सा है तुम्हारा स्पर्श ... !
प्रतोषः (नासमझी से) क्या ? शीलवती रू (बाहुमूल की ओर देखते हुए) कितना उष्ण ... जैसे कुछ जीवित ...
प्रतोषः (हल्की मुस्कान से) कैसी बातें कर रही हो ?
शीलवतीः (किंचित् आवेश से) देखो, अभी तक मेरी त्वचा पर स्पन्दन है...!

(मुग्ध – सी उस स्थान पर अपना कपोल रगड़ती है , अधरों से छूती है । कुछ क्षण बाद आँखें उठाती है । दृष्टि मिलने पर प्रतोष समझने के ढंग से मुस्कराता है , अपनी बाँहें फैलाता है । शीलवती चुपचाप सिमट आती है , उसके सीने पर सिर टिका लेती है ।)[5]" पांच वर्ष तक विवाहित होकर भी कुमारी की तरह जीवन जीने वाली स्त्री जब अपने पूर्वप्रेमी परितोष का स्पर्श पाती है तो उसका जीवन दर्शन ही बदल जाता है। यही समाज, जब ऐसी स्त्री को प्रेम में पाता है जो विवाहित है तो उसको मर्यादा का उपदेश देने लगता है। जबकि यह घटना स्त्री का चयन न होकर उसी पुरुषवादी समाज का हितसाधन बनने के उपरांत घटित होती है। ओक्काक अपनी खीझ को शीलवती के सामने प्रकट करते हुए कहता है –

"ओक्काकः (तीव्र स्वर में) वैवाहिक बन्धन की कुछ मर्यादा भी होती है ।

शीलवतीः (आवेश से) निभायी है मैंने ... और पाँच वर्ष तक मर्यादा निभाने में उतना सन्तोष नहीं मिला , जितनी तृप्ति इस एक रात में मिली है ! ... बोलो ... किसे मानूँ ? ... किसको दूँ महत्त्व?"[6] नाटककार सुरेंद्र वर्मा ने विवाह संस्था में निहित खामियों की ओर भी संकेत किया है। वर्मा जी स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व के समर्थन में विवाह जैसी महत्त्वपूर्ण संस्था को नकारने में भी पीछे नहीं हटते। यही भाव गिरीश कर्नाड के यहां भी स्पष्ट होता है –

": विवाह व्यक्ति से होता है शरीर से नहीं।[7]" दोनों ही नाटककार व्यक्ति और समाज के संघर्ष के मध्य व्यक्ति सत्ता को अधिक महत्त्व देते हुए दिखाई देते हैं। हयवदन नाटक की नायिका पद्मिनी स्त्री के उस स्वभाव का नेतृत्व कर रही है जो अपने पति में वह गुण देखना चाहती है कि वह शारीरिक और मानसिक दोनों स्तर पर श्रेष्ठ और सुंदर हो, एक ही व्यक्ति में कई गुणों की कामना करने वाली कामिनी के रूप में नायिका पद्मिनी दोनों ही पुरुषों को खो देती है–

" पद्मिनीरू दोनों जले, जिए, जूझे, गले लगे और मर गए । मैं चुपचाप खड़ी रही । मैं कहती – चलो, तुम दोनों के साथ रह लूँगी, तो शायद दोनों अभी जीवित होते । पर मैं यह न कह सकी । हाँ, न कह पाई । नहीं, कपिल ! नहीं, देवदत्त ! मैं भली भाँति जानती हूँ, तुम दोनों एक साथ सुख से नहीं रह सकते थे । मेरी तरह तुम्हें अपने शरीरों का भी साझा करना पड़ता । मृत्यु से परिचित थे, तभी तो दो भाइयों की तरह लड़ते हुए मरे । जीवित रहते तो पशुओं की तरह लड़ते रहते । इसलिए मैं चुपचाप तुम दोनों को मृत्यु की ओर ढकेलती रहीय और तुम दोनों ने एक – दूसरे को क्षमा कर दिया– मैं ही रह गई ।[8]" स्त्री–पुरुष संबंधों में काम की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता है। काम के नियमन हेतु

विवाह संस्था का सहारा लिया गया। दाम्पत्य जीवन में कई–कई प्रकार की विसंगतियाँ दिखाई देती हैं । विवाह की सार्थकता का खंडन पति–पत्नी के जन्मजन्मांतर के संबंध के खोखलेपन को पुष्ट करता है । पति–पत्नी के एक से टूटकर दूसरे से जुड़ने की प्रक्रिया कहीं तो समस्याओं का समाधान बनती है और कहीं अन्य विषम समस्याओं का सिलसिला बनने लगती है । पति–पत्नी में संबंध विच्छेद होकर शारिरिक पवित्रता का मूल्य, जो भारतीय नारी के लिए चरम–जीवन मूल्य रहा था, वह महत्वहीन हो गया है । आज आदर्श का अर्थ भी बदल गया है । स्त्री के सेवाभाव तथा त्याग के शब्द भी खोखले रह गये हैं ।

नाटककार सुरेंद्र वर्मा और गिरीश कर्नाड भले ही स्त्री–पुरुष संबंधों को अभिव्यक्त करने के लिए ऐतिहासिक–पौराणिक कथानकों का सहारा लेते हैं किंतु उनकी संवेदना आधुनिक चेतना पर ही केंद्रित है। आधुनिक युग में स्त्री–पुरुष संबंधों में नैतिकता के मानदंड भी बदल गए हैं। इस संबंध में रामधारी सिंह 'दिनकर' लिखते हैं कि "प्राचीन नैतिकता के अंदर चाहा यह जाता था कि विवाह के पूर्व तक युवक और युवती, दोनों को सेक्स के अनुभव से मुक्त रहना चाहिए । किन्तु आर्थिक कारणों और जीवन के ढंग बदल जाने से अब विवाह विलम्ब से किये जाते हैं, यहाँ भी आजतक कौमार्य की शर्त नारियों के लिए जितनी कड़ाई से बरती गई है, उतनी कठोरता से नरों के लिए नहीं ।[9]" पितृसत्तात्मक समाज में सारी नैतिकताएं स्त्रियों के लिए ही कठोरता के साथ लागू की गई हैं। पुरुषों पर न तो यौन शुचिता संबंधी कोई वर्जना है और न ही समाज में उसके लिए बहुत कठोर दंड। यह समाज स्त्री सदियों से स्त्री की ही अग्निपरीक्षा लेने का आदी रहा है।

निष्कर्ष

हम देखते हैं कि स्त्री–पुरुष संबंध मुख्यतः दो ही होते हैं – वैवाहिक और विवाहेतर। इन दोनों विभाजनों में प्रेम, काम और अर्थ के कारण आज संबंध प्रभावित हो रहे हैं। काम और अर्थपरक संबंध अपनी जरूरतों की पूर्ति के पश्चात समाप्त भी हो सकते हैं किंतु प्रेम रिश्तों को आत्मीयता की डोर से बांधे रखता है। सुरेंद्र वर्मा और गिरीश कर्नाड दोनों ही नाटककार अपने नाटकों में प्रेम को महत्त्व देते हैं, चाहे इसके लिए विवाह संस्था पर चोट ही क्यों न करनी पड़ी हो। आधुनिक युग में नैतिक मूल्यों के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण और प्राचीन मान्यताओं के प्रति प्रश्नाकुल दृष्टि को ध्यान में रखते हुए नाटककार कथानक और पात्रों की रचना करते हैं। इन नाटकों में उपस्थित पात्रों की पीड़ाएं आज के समाज में जी रहे स्त्री–पुरुषों की अपनी पीड़ाएं बनकर उभरती हैं।

संदर्भ

1. सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1975, पृ. सं. – 28
2. गिरीश कारनाड दृ हयवदन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, दरियागंज, संस्करण – 2010, पृ. सं. – 120
3. सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण – 1975, पृ. सं. – 28
4. सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण – 1975, पृ. सं. – 49
5. सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण – 1975, पृ. सं. – 49
6. सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण – 1975, पृ. सं. – 63
7. गिरीश कारनाड – हयवदन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, दरियागंज, संस्करण – 2010, पृ. सं. – 72
8. गिरीश कारनाड – हयवदन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, दरियागंज, संस्करण – 2010, पृ. सं. – 110
9. रामधारी सिंह 'दिनकर' – विवाह की मुसीबतें, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण – 2019, पृ. सं. – 54